UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182349

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—67—11-1-68—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. M 81 M674g Accession No. H 3569

Author मिश्र, उदयभान.

Title गीतों का हमला. 1957.

This book should be returned on or before the date last marked below.

उदयभान मिश्र

गीतों का हमला

• शारदा प्रकाशन •

प्रकाशक

शारदा प्रकाशनं
३८/१, रामतनु बोस लेन
कलकत्ता—६

प्रमुख वितरक

हिन्दी प्रचारक
• १६५/१ हरिसन रोड, कलकत्ता
• ज्ञानवापी—वाराणसी

मुद्रक

राधा आर्ट प्रेस
प्रेमचन्द सुराना
२१९-सी ओल्ड चीना बाजार स्ट्रीट,
कलकत्ता

१६५७]

[दो रुपये

• संग्रह में भूमिका देना अपनी सीमा अथवा सामर्थ्य जताने का ही प्रयास प्रायः होता है, मैं ऐसा कुछ करने नहीं जा रहा, कवितायें अपनी बात स्वयं बोलेंगी।

• पर चाह कर भी आभार स्वीकार करने से नहीं मुकर पा रहा हूँ। वैसे इसके भी फार्मेल्टी माने जाने का ख़तरा हो सकता है। भाई गोविन्द अग्रवाल का स्नेहाग्रह ही इसके प्रकाशन की मूल प्रेरणा है। मित्रवर मुक्त ने संग्रह की कविताओं के चयन तथा इनकी छंटाई, सफाई में दिलचस्पी ली। भाई मार्कण्डेय, दुष्यन्त, श्री हरि तथा श्री श्रीकृष्ण दास एवं डा० महादेव साहा के सहयोग एवं सुझाव मिले जो किसी न किसी रूप में इस संग्रह के लिये महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए।

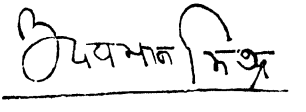

२६ जून १९५५ की साँझ को
हबड़ा स्टेशन पर आने वाली
तूफान को.....
जिसने मुझे घर से पाँच सौ मील
दूर लाकर पटक दिया !

—उदयभान

संग्रह की कवितायें :—

- सूरज आता होगा
- आह्वान
- संदेश-वाहक मेघ से
- आज के वैज्ञानिक से
- संकेत
- गीतों का हमला
- जिज्ञासा
- चेतना
- नई साध
- सपन न लौटे
- चाँदनी का गीत
- मैंने तुम्हें देखा है
- सम्बल
- दो-दो बातें
- साल के पहले दिन पर
- अन्तिम बात
- गीत
- गीत ये.....

सूरज आता होगा

हँस लो कुछ क्षण और धरा पर, नभ के चाँद सितारो !
आग लिये हहराता पथ पर-सूरज आता होगा !!

कब तक ढाँक सकेगी भू को,
निशि तम की धारा में ?
कब तक मौन रहेगा पंकज,
कलियों की कारा में ?

कब तक धरती का सुहाग वर,
तम में छिपा रहेगा ?
कब तक पत्तों की झुरमुट में,
पंछी पड़ा रहेगा ?

कब तक होगी मनचाही यह-
कब तक धरा सहेगी ?
कब तक भू पर अन्धकार की
चादर तनी रहेगी ?

कर लो अपने मन की कुछ क्षण और—गगन के तारो !
ज्वाल लिये घहराता नभ में सूरज आता होगा !!

अब तो जीवन और मरण का
भीषण झगड़ा होगा,
और तुम्हारी मनचाही पर
बल का पहरा होगा,

कुसुमों से खेलेगी हँस कर
रोने वाली धरती!
हरी लताओं में झूमेगी
बन मतवाली धरती,

बन्द रहेंगे गीत रात के
सरस प्रभाती होगी,
हारेगी जब रात और जब
जीत दिवस की होगी,

खोलो घर के द्वार किरण आयेगी—भू के लोगो!
थाल लिये कर में कल सूरज तिलक लगाता होगा!!

'प्रतिभा'
अगस्त-सितम्बर
—१९५६

आह्वान

नयी सर्जना का महल उठ रहा है—
प्रिये ! नींव की तुम प्रथम ईंट रख दो !

गयीं सूख कलियाँ, झरे पात वन के;
रहा नाचता नाश का प्रेत हँस कर,
तुम्हारी विभा की चिता जल रही थी-
मगर था विवश मैं—उठे थे नयन भर।
बहुत चाहता था तुम्हें आ उबारूँ !
मगर मुक्त था कब तुम्हें जो सवारूँ ?

रुधे पाँव की टूटतीं आज कड़ियाँ—
प्रिये ! अर्चना का कलश आज भर दो !

जलीं जेठ में तुम—कि मधु उठ गया है,
तपीं आग में तुम—कि युग तप गया है,
चढ़े हैं विकल प्राण के स्वर गगन में,
बढे हैं चरण नापने पथ अनल में।
लगा नाचने स्वर विकट वज्र बन कर,
लड़ेगी नयी जिन्दगी मौत से बढ़!

नये पंथ का नव पथिक उठ रहा है,—
प्रिये! पंथ को गीत से आज भर दो!

तुम्हारी अथक साधना गा रही है,
तुम्हारी प्रभा विश्व में छा रही है,
तुम्हारे मधुर एक संकेत पर ही—
धरा लुट गयी-आज मुस्का रही है।
तुम्हारी चिता की गरम राख पर हो,
खड़ा, शक्ति का देवता गा रहा है!

नयी चेतना का बिगुल बज रहा है,
प्रिये! चेतना को दिशा और बल दो!

छलकता तुम्हारे नयन में हलाहल,
हरे हो गये पी जिसे प्राण घायल,
लबालब भरे हैं मधुर स्नेह के तट,
उठी बाँह में पल रहे प्यार के पल!
मुखर हो रहीं सब सृजन-शक्तियाँ नव,
जगीं तुम कि जागीं सभी युक्तियाँ नव,

नया स्वर नयी वीन पर मुस्कुराता—
प्रिये! राग में तुम नवल ताल भर दो!

नयी ज्योति आँखें बिछाये हुए है,
नया प्रात बाँहें बढ़ाये हुए है,
तुम्हारी प्रतीक्षा कमल कर रहा है,
तुम्हें बौर आँखों चढ़ाये हुए है।
धरा मुस्कराती-मधुर गान गाती,
मिलन-आश मन में लगाये हुए है!

नये पंथ पर नव दिये जल रहे हैं—
प्रिये! पंथ पर ज्योतिमय पाँव धर दो!

'विशाल भारत'
(जनवरी')१९५६

संदेश—वाहक मेघ से

लौट जा रे मेघ! कुछ कहना नहीं है,
फिर विरहिणी को मुझे छलना नहीं है!

याद है वह वर्ष जब मैंने कहा था-
जा प्रिया से कहो मैं भूला नहीं हूँ
मैं यहाँ के फूल पर फूला नहीं हूँ
दर्द नस-नस में तुम्हारा भर उठा है
स्वप्न मुझसे आ तुम्हारा कह उठा है
मैं अभावों में तड़पता जी रहा हूँ
प्यार के टुकड़े सिसकता सी रहा हूँ

पंख दो मुझको, नए शृंगार दो तुम
ओ प्रवासी! आज नूतन प्यार दो तुम।

और मैंने भी कहा था-मैं वही हूँ
भूल जाऊँ यों तुम्हें ऐसा नहीं हूँ
आ रहा हूँ, किन्तु थोड़ी देर होगी
क्योंकि पथ में आज कुछ मुठभेड़ होगी।

पन्थ का अवरोध भीषण तोड़ना है
और बहकी आँधियों को मोड़ना है
किन्तु यह मैदान मेरे हाथ है अब
हर उभरती शक्ति मेरे साथ है अब,

जा कहो मेरी प्रिया से गीत गाए
नन में अब व्यर्थ के आँसू न लाए
आ रहा हूँ मैं नया संसार लेकर
आ रहा हूँ मैं विजय का माल लेकर

किन्तु मेरे ध्यान में तब था न आया
अश्रु से जिसकी बनी है स्वयं काया
स्वयं जो है मुक्त, सीमा-हीन है जो,
खुद बरसने के लिए बेचैन है जो,
वह भला क्या अश्रु पोंछेगा किसी के ?

तभी तूने बात मेरी कुछ न कहकर
भार हल्का कर लिया मन का बरस कर
अर्थ इसका था विरहिणी ने लगाया
है जलद ने अश्रुमय संदेश लाया

औ इसी से आज तक वह रो रही है
पीर मेरी तिलमिलाती ढो रही है
आज जब संदेश फिर तू माँगता है
सोचकर बीती कथा मन काँपता है

लौट जा रे मेघ, कुछ कहना नहीं है
फिर विरहिणी को मुझे छलना नहीं है।

'राष्ट्रवाणी'
(फरवरी १९५७)

आज के वैज्ञानिक से

ओ! यंत्रों के बल पर जीने वालो
'भू अम्बर को बाँधा मैंने
यह दम भरने वालो
विश्व--शक्तियों के संचालक
वैभव के सम्राट !!
ओ न्युटन के बेटो
फैराडे के स्वप्न सजोने वालो
ओ प्लेटो के ध्वजा-धारियों
तुम्हें बधाई, तुम्हें बधाई !!

तुमने सागर की छाती पर
कल पुर्जे दौड़ाए
तुमने भू पर जम कर अपना,
सिक्का प्रबल जमाया
दहल उठा अम्बर का स्तर-स्तर
वायुयान के स्वर से
दो छटाँक के इस दिमाग के
बल पर तुमने
बाँध लिया तूफान
पवन पर रोक लगाई
सूरज दहला, काँप रहा है
चाँद गगन में—
जब से तुमने उस पर अपनी
तृषा भरी आँखें ठहराईं

बँधे तुम्हारे परुष करों में
पाँचों तत्व, बधाई तुमको
बन जाओ भगवान-खुशी है
किन्तु स्वयं को देखो-क्यों कर
यद्यपि तुम मनु के बेटे हो
पर न मनुज तुम बन पाए हो !!

❀ ❀ ❀

चले बसाने चाँद बहुत अच्छा है,
किन्तु तुम्हारी धरा-कि जिस पर
तुम जीते हो
देखो क्या बस पाई
पा कर रूप, शक्ति, तुम से ही
फूल रहा है अणु—बम
तुम भी फूले हो

किन्तु देख लो
शिव का ही वरदान
उन्हीं के लिए — श्राप बन
भस्मासुर का रूप पकड़ कर
नहीं आ रहा क्या वह पीछे पीछे ?

❀ ❀ ❀

हिरोशिमा, नागासाकी का उजड़ा वैभव
घायल, आँखों में आँसू भर
नहीं तुम्हारी ओर देखता है क्या ?
जिसकी राखी की ढेरी में
सोए कितने लाल—
और
कितनी माँगों की लाली सोयी

कितने काले घुँघराले केशों के फूल
झुलस-झुलस कर झर कर
जिसमें सोये हैं चुपचाप!
जिसमें कितने स्वप्न और अरमान
जल गए—राख बन गए
यही तुम्हारे अणुबम की है देन
कि जिस पर तुम्हें गर्व है!!

❀ ❀ ❀

ओ, पौरूष के प्रेत!
मिली है शक्ति, धरा यह उलटो
शेषनाग के फण पर चढ कर
दौड़ो—तोड़ो
क्षत-विक्षत कर दो जन—जीवन
लोहू की तुम धार बहाओ

कर दो सारी सृष्टि रक्त—मय
सागर में तूफान उठाओ
अम्बर जले, धरा यह धधके
कोटि दहकते अग्नि—पिंड
अम्बर में नाचें
स्वप्न सत्य हो शिव का
करो प्रलय-वन शक्तिवान
बन तेजवान तुम !!

❀ ❀ ❀

पर यह दानवता का पौरुष
जिसके पाँवों में है केवल बँधा विनाश
लाल-लाल अंगारें हैं, जिसकी आँखों में
और करों में उठे कृपाण
लोहू के प्यासे
हैं भूखे मनुज—मांस के
पालक पोषक बनने का क्या
स्वप्न देख सकते हैं वे भी ?

वैसे—
जैसे—चमक रहे हैं यश से
शंख, चक्र औ गदा पद्म
उस महा विष्णु के

भरा कि जिसमें पूज्य पिता का स्नेह
और माता की ममता
जिसके लिए मृत्यु है उसके
बेटों का दुःख, रुदन, पतन
औ—
पालन ही जिसका जीवन है

❀ ❀ ❀

ओ, वैज्ञानिक ! सम्हलो
आँखें खोलो
पूजे जाओगे तुम तभी—
कि जब तुम
शिव बनने के साथ
विष्णु, ब्रह्मा, स्वमेव बनोगे।

—अमृत पत्रिका
—१९५५

संकेत

यह हवा,
जो अभी थोड़ी देर पहले
बह गई है —
जानते हो,
बात क्या वह कह गई है ?
कह गई है :
आरही हूँ आँधियों के देश से मैं !
उठ जहाँ से,
एक भीषण - सा बवंडर
चीखता - चिग्घाड़ता,
इस ओर दौड़ा आ रहा है !

देखना, डरना न उससे;
मत विदकना,
जरा जमकर खड़े रहना,
यह नहीं तूफान कोई अजनवी है,
यह तुम्हारा है हितैषी —
मित्र है यह,
तुम्हें इससे बल मिलेगा।
यह तुम्हारी राह के अवरोध सारे —
तोड़ देगा!
पर्वतों को यह बनाकर धूल पथ की —
छोड़ देगा!
फिर तुम्हारी राह: उजली स्पष्ट होगी
और पाँवों में नई: फिर शक्ति होगी।

'साहित्यकार'
नवम्बर, '५६

गीतों का हमला

बहुत दिनों से नहीं लिखा है
गीत एक भी,
उफ्.... मैं भी कितना निर्दय हूँ!
रोज हजारों गीत
खिड़कियों - दरवाजों पर तो आते हैं
मुझे याचना-भरे स्वरों में
गुहराते हैं;
लेकिन .... मैं कितना निर्दय हूँ!!
सुनी - अनसुनी कर देता हूँ,
द्वार बन्द झटकर लेता हूँ;
हो निराश, आँखों में आँसू भरे
गीत फिर -
फिर जाते हैं।

लगा रखे हैं रोशनदानों और खिड़कियों
पर मोटे-काले-से पर्दे,
जो कि उमड़ती हुई किरण हर
पी जाते हैं;
और न जिनसे छनकर लम्बी,
छोटी, भोंड़ी, सुघड़ी,
कोई भी, हिलती छाया बाहर की
भीतर तक अब आ पाती है,
हर आगत स्वर टकराए ही बिना
हवा में खो जाता है!
हर हहराता ज्वार चीखता
गिर जाता है....
मुझे न आकर
छू पाता है!
इसीलिए तो गीत आजकल
नहीं एक भी लिख पाता हूँ!

किन्तु, आज बाहर दरवाजों पर
गीतों की भारी गहरी भीड़ लगी है!
दरवाजों पर धक्के देते,
शोर मचाते,
गीत आज बढ़ते आते हैं!
लगता है :
जैसे दरवाजे टूट जायँगे
गीत न ये वापस जायँगे!
वे सुराख कमरे के सारे,
जिन्हें बंद रक्खा था मैंने —
उनको बस अब तोड़,
दौड़ती, किरणें कमरे में घुसती हैं,

काँप रहे हैं परदे थर-थर ....
शीशे चिटख रहे हैं चट-चट ....
बाहर से ध्वनियाँ आती हैं—
बाहर निकलो ! बाहर निकलो !!

.....

मैं घबराया सोच रहा हूँ—
दरवाजे क्यों अब न खोल दूँ ?
जो अनाथ बन तैर रहे हैं ,
नाता उनसे क्यों न जोड़ लूँ ?
क्यों न बुला लूँ ?
क्यों न बिठा लूँ ?
गीत आज क्यों न एक गा लूँ ?

'नयासमाज'
अप्रैल '५७

जिज्ञासा

मेरे गीतों की आँखों में छिप - छिपकर मुस्काने वाले -
रूप तुम्हारा क्या है ?

पतझर के पीले पातों - सा
अरमानों पर पीलापन है !
नग्न द्रुमों की सूखी बाहों -
सा वैभव में उजड़ापन है !
रस से रहित, तिरस्कृत जीवन
कटुतामय मेरा यौवन है !
किन्तु गगन की ओर जलद की
सुधि में मेरा तन है, मन है !

मेरे स्वप्नों के मरुथल में, साज नया बिखराने वाले !
भेद तुम्हारा क्या है ?

खिलते हुए फूल पर दौड़ी—
दुनियाँ, किन्तु न झाँका मैंने!
अच्छा-बुरा कहें सब उसको
मूल्य न उसका आँका मैंने!
'मधु है इसमें—सुनकर सोचा:
केवल इसमें गहरा विष है
किन्तु पकड़कर हाथ तुम्हीं ने
कहा: वत्स, यह अमृतमय है!

मेरी मन-वीणा के साधक! रागों की पहचान तुम्हारे—
सच-सच बोलो क्या है?

उठते हुए ज्वार पर मैंने
चढ़ना चाहा : तुम्हें बुलाया ;
'निज का केवल करो भरोसा'—
बदले में जब उत्तर पाया
खीझ उठा मैं तुम पर, अपने
पर भी, दौड़ा भरकर साहस ;
गिरा पन्थ में मृतवत् हो मैं —
खुले नयन जब तुमको पाया !

साहस मेरा तोल तोलकर सम्बल देनेवाले बोलो,
ढंग तुम्हारा क्या है ?

प्रयाग
दिसम्बर १९५५

चेतना

आज तुम्हारे मधुवन में आते जाने क्यों
मन मेरा शंकाओं से भर-भर उठता है !

मैंने सदा बहारों को ही दुलराया है,
मैंने सपनों को फूलों पर बहलाया है,
मैंने जलते हुए जेठ की लपटों में भी—
जब गाया है, गीत तुम्हारा ही गाया है।

किन्तु आज क्या बात—कि सिर यह चकराता है !
गीत तुम्हारा गाते यह मन घबराता है !
यह मधुमास तुम्हारा जो फूला-फूला है,
आज न किंचित मन मेरा बहला पाता है !

जहाँ आदमी पशुओं का जीवन जीता है,
जहाँ मनुज है, किन्तु मनुजता से रीता है;
जहाँ करोड़ों सीताएँ निशि-दिन रोती हैं;
जहाँ माँगपर धर अँगार कलियाँ सोती हैं;
जहाँ दुधमुँहे राम-भरत की-सी कायाएँ—
भूखी, नंगी, फुटपाथों पर ही सोती हैं!

वहाँ तुम्हारे संकेतों पर गाते मुझको,
लगता है जैसे खुद को मैं बेच रहा हूँ!
मेरे ही आगे मेरी आत्मा लुटती है,
मैं चुपचाप विवश हो, जिसको देख रहा हूँ!

लगता है गाना यह केवल गद्दारी है,
गीत कि जिसमें मानव का शृंगार नहीं है!
लगता है निर्बल कायर कवि के गीतों का—
जग में कुछ भी अर्थ नहीं, व्यवहार नहीं है!

मैं गाकर अब युग के साथ न घात करूँगा,
मैं पतझर में नहीं विभा की बात करूँगा!
मैं ईमान न जीते जी अब बेंच सकूँगा,
मैं यह गान न निष्फल होते देख सकूँगा।

आज तुम्हारी तानों पर गाते जाने क्यों—
मन मेरा शंकाओं से डर डर उठता है!

'विहान'
कलकत्ता '५६

नई साध

नई धरा की साध अभी काँटों पर गाती होगी!

नहीं लुभा सकता उसका मन
यह वसन्त मधु का घट खोले!
नहीं डुबा सकते रंगों में—
अभी उसे द्रुम पल्लव भोले!
नहीं आम की मञ्जरियाँ नव—
भी उसके पग बाँध सकेंगी!
नहीं कमल की पंखुरियाँ भी
दामन उसका थाम सकेंगी!

उसके अन्तर में जलता है जेठ—कहो मुस्काये कैसे?
वह तो काँटों पर चल-चल कर प्राण अभी सहलाती होगी!!

उसको तो हर एक साँस से
जीवन का बदला देना है!
अपना लुटा सुहाग प्रकृति से
अभी उसे वापस लेना है!
उसकी आँखों में पतझर के
पीले पात सुलगते झर झर,
चीख रहा असमय में उजड़ा
कलियों का यौवन रह रह कर

गम के आँसू ही पीना तो केवल उसका काम नहीं है—
आकुल ज्वारों पर चढ़ कर वह-गान प्रलय के गाती होगी!!

यह वसन्त है ? या कि व्यंग है
दिल के उसके हरे घाव पर ?
खिले फूल या नया आक्रमण
ठूँठे वृक्षों के स्वभाव पर ?
क्या हँस रहा विश्व का जीवन
फूलों की मुस्कानों के सँग ?
क्या गा रहे उमंगों में भर,
प्राण राग नव भ्रमरों के सँग ?

सूखे स्वप्नों की छाया बन—चलना उसका काम न केवल
वह बन कर रसधार धरा पर, धार कहीं बरसाती होगी

छलक रही उसकी आँखों में
ममता भरी स्नेह की धारा!
उसकी बाहों में सीमित है
नए विश्व का नया किनारा!
उसके संकेतों पर जग का
पौरुष सौ सौ बार झुकेगा!
उसके चरणों के चिन्हों पर
युग, युग का इतिहास लिखेगा!

बौराई कोयल की कू-कू से होतीं कब साधें पूरी?
वह तो जन—जन के प्राणों में बन कर हूक समाती होगी!

'सारथी'
३ जून, १९५६

सपन न लौटे

देर बहुत हो गई .....
सुबह के गये अभी तक,
सपन न लौटे!

जाने क्या है बात —
दाल में कुछ काला है
शायद उल्कापात कहीं होने वाला है!
डरी दिशायें,
दुबकी, ...
चुप हैं;
मातम का गहरा पहरा है!
किसी मनौती की छौनी सी,
बेबस, द्रवित, उदास धरा है

ऐसे में—
मेरे ये अपने सपन लाड़ले
जानें किन पहाड़ियों—चट्टानों से
लड़ते होंगे!
किन जलते रेगिस्तानों में
जलते होंगे!!
किन बहकी लहरों में—
उठते होंगे, गिरते होंगे !!!
जाने किधर भटकते होंगे!
उड़ते होंगे!
.....
.....
भला कहीं कोई ऐसा भी .....
जो मेरी कुछ मदद कर सके
जाये, ढूँढ़े, देखे —
मेरे सपन कहाँ हैं?
और—जहाँ हों
वहाँ पहुँच कर —
कह दे उनसे
उनका पिता यहाँ
चौखट पर दिये, सँजोये
विजय सँदेशा सुनने की इच्छा में
विह्वल .....
उनकी राहें जोह रहा है?

'क्षितिज'
जून, '५७

चाँदनी का गीत

अम्बर में चन्दा का प्यार बहा जा रहा!

तारों के गहनों में नाच रही चाँदनी,
झींगुर की रुनझुन में पायलें बजा रही!
बोल रही डालों पर पी पी पपीहरी,
विरही उरों में आज पीड़ा जगा रही!

डोल रहे धरती पर चलदल के पीत पात-
भीनी सुगंध लिए मंद पवन आ रहा!

अलसाई पुरवैया आज बही जा रही!
पिघली सी चाँदी की धार बही जा रही!
धरती की छाती पर फूल झरे जा रहे—
पातों के आनन पर आँसु ढले आ रहे!
खोज रहा मन मेरा, मनमाना देवता-
भूले से मन का सितार बजा जा रहा!

झूम रहीं उपवन में चम्पा की डालियाँ,
खेतों में झूम रहीं बाजरे की बालियाँ!
झाँक रहे झुरमुट से पंछी अलसाए से,
मार रहे डालों पर तीतर फुदकारियाँ!
खेल रहा मारुत भी लतिका की गोद में—
लहरों में धुँधला-सा चाँद छिपा जा रहा!

'सारथी'
६ मई, १९५६

मैंने तुम्हें देखा है

मैंने तुम्हें देखा है.....
मुरझा रहे फूलों पर,
ओस बन ढुलकते हुए!
जलती हुई राहों पर,
दूब बन लहकते हुए!
पिघली निगाहों पर
प्यार बन उमड़ते हुए!
मैंने तुम्हें देखा है ....
सूरज की धुँधली आँखों पर

मैंने तुम्हें देखा है,
साँझ की लोहित घायल
पाँखों पर!
मैंने तुम्हें देखा है,
हर गिरते को बढ़ कर
हाथ देते हुए!
मैंने तुम्हें देखा है,
हर भूले भटके का
साथ देते हुए!
मैंने तुम्हें तौला है
आजमाया है
और पाया है
मेरी हर राह पर
तुम्हारी छाया है!

'हुगली तट'
अप्रैल '५७

सम्बल

लगता है जैसे तुम मेरी,
हर पुकार पर आ रहे
और तभी तो तूफानों में भी—
मैं गाता जा रहा!

राही हूँ — केवल चलना ही
मेरी किस्मत में बदा,
अच्छा है — मत पूछो मुझसे
मेरे जलने की कथा;

साध बहुत है मन में मेरे
पाऊँ ऐसा मीत मैं,
जिसे बैठ कर कभी-कभी मैं
सुना सकूँ मन की व्यथा!

किन्तु आज यह अपना मन ही
अपने को समझा रहा—
आज एक क्या सारा भूतल
तुम्हें पूजने आ रहा!

टकराते तूफ़ान अगर तो
उनकी क्या परवाह है—
डर कैसा यदि भरी कण्टकों
से मंजिल की राह है ?

चिन्ता की क्या बात पन्थ में
यदि चिल्लाता काल है—
अजमाने को जोर सभी के,
मन मेरा तैयार है !

भिड़ सकता हूँ दुनियाँकी,
हर बिगड़ी हुई जमात से—
क्योंकि ज्योति का भूखा राही,
सम्बल तुमसे पा रहा !

सच मानो, मेरी बाहों में
पौरुष इतना भर गया,
चाहूँ तो गढ़ सकता हूँ मन
का कोई संसार नया!

अवनी-अंबर दोनों मेरे,
यदि तुम मेरे साथ हो
भय क्या उसको जिसकी रक्षा—
प्रिये! तुम्हारे हाथ हो?

लगता है होगा अभिनन्दन,
अब मेरा हर द्वार पर—
और तभी तो अंधकार में,
भी मुस्काता जा रहा!

'सारथी'
१५ जुलाई, १९५६

दो दो बातें

मुझे राह में खड़ा हुआ जब देखा तुमने
सोचा क्या पथ की दूरी से थका हुआ हूँ?
मुझे कगारे पर सहमा कुछ मौन देखकर -
सोचा क्या तूफानों से मैं डरा हुआ हूँ?

कहीं बादलों का ऊँचा स्वर बाँध सकी है
धरती औ' अम्बर की यह छोटी सी दूरी?
कहीं शिलाएँ रोक सकीं क्या निर्झर की गति -
विह्वल, उज्ज्वल, बल, पौरुष, साहस से पूरी?

पीता है भूगर्भ युगों तक आग नहीं क्या
अंगारों शोलों का ज्वार उठाने के हित?
जाती है यह धरा जेठ में झुलस नहीं क्या-
सावन में तन का शृंगार सजाने के हित?

पता नहीं क्या तुम्हें कि आँधी आ सकती है?
या कि सोचते हो वह बाँधी जा सकती है?
नहीं तुम्हें कुछ ज्ञान कि पाँव उखड़ जायेंगे?
नहीं सोचते हो कि कहाँ उड़ कर जायेंगे?

बाँध सकोगे पवन कि जब वह हहराएगा?
बुझा सकोगे ज्वाल कि जब वह लहराएगा?
दबा सकोगे ज्वार कि जो उठने वाला है?
रोक सकोगे बाण कि जो छुटने वाला है?

शत - शत विषधर नागों का विष पचा सकोगे ?
अनगिन प्राणों की हुंकारें दबा सकोगे ?
क्या दावानल की ज्वालाएँ चाँद पियेगा ?
क्या वज्रों की चोट रजत प्रासाद सहेगा ?

क्या ठहरोगे गगन अनल जब बरसाएगा ?
क्या गाओगे गान, प्रलय जब छा जायेगा ?
क्या जलते उच्छ्वासों की सीमा आँकोगे ?
क्या भड़के अंगारों का दामन थामोगे ?

कहीं पाप का दीप युगों तक जलता है क्या?
कोई अत्याचार बहुत दिन चलता है क्या?
क्या मुस्कान कभी होठों में बँध पाई है?
क्या गीतों की परी कंठ में रह पाई है?

फूटेंगे स्वर, फूटेंगे स्वर, आसमान में!
डूबेंगे स्वर, डूबेंगे स्वर, अनल गान में!
आएगा मधु, आएगा मधु, छवि बिखराता!
गाएगा जग, गाएगा जग, हर्ष मनाता!

'प्रयाग'
मार्च, १९५५

साल के पहले दिन पर

आज साल के पहले दिन पर,
प्राण ! उठो,
दरवाज़ा खोलो,
करो अङ्कुरों का उन स्वागत,
जिन्हें न कुण्ठा की ज़हरीली,
अभी हवायें लग पाई हैं ;
द्वेष, द्रोह की लहरें जिनमें,
नहीं अभी तक जग पाई हैं ;
उन्हें प्यार दो,
सींचो, जल दो,
क्यों कि नये को जीवन देना
ही तो सच्चा एक धर्म हैं !
महत् कर्म है !!

और, विजन के
तुलसी के बिरवे को देखो
जो न अभी तक
किसी विरहिणी की आँखों में
चढ़ पाया है,
जहाँ एक भी नहीं सँझौती
का लघु दीपक
किसी वियोगिन के हाथों से
जल पाया है,
जो ठुकराया हुआ
उपेक्षित....
अनचीन्हा है,

वर्ष-वर्ष के दिन पर उससे
प्राण! आज पहचान करो तुम;
आखिर वह भी तो तुलसी का
ही बिरवा है!

और आज के मंगल क्षण में
उस ऊँचे टीले को देखो,
जिसकी कुछ कंकड़ियाँ—
पावों में गड़ती हैं;
छायायें हुंकार मारतीं
जिस पर उठती हुई अभी
कुछ-कुछ डरती हैं!

किन्तु हमारी नयी मान्यता,
नयी सफलता —
का प्रतीक है टीला,
देखो
इसे सँवारो,
माँजो, पीटो
दौड़ो इस पर,
खुद ही इतना तेज़ कि
जिससे
कंकड़ियाँ सारी की सारी
बुकनी हो जायें,
पिस जायें;
ऐसी —
जिन पर
थका बटोही रुके करे विश्राम
मिले कुछ शान्ति उसे अब!

आज साल का पहला दिन है —
प्राण! करो पहचान सभी से,
जो कि हमारे
हमदर्दी हैं, हमराही हैं,
दरवाजों को अरे; खोल दो!
नयी हवायें
नई दिशाओं से
आयेंगी,
हर दरवाजे पर जायेंगी,
थपकी देंगी,
शोर करेंगी;
प्राण! आज तुम सावधान हो
स्वागत कर लो
नये प्रात का !
नये वात का !!
नयी किरण का !!!
नये चरण का !!!!
नये साल के
पहले दिन का !!!!!

'हुगली तट'
१ जनवरी '५७

अन्तिम बात

बातें अब खतम करो -
सिर मेरा मत खाओ,
जो कुछ भी होता है
उससे मत चकराओ।

पीरों की करुवाहट -
पीने से जाती है
कमज़ोरी सहने की -
सहने से जाती है।

प्राणों को तोलो औ,
कसो, आजमाओ तुम,
हो सके अगर तुमसे
कमर कसो, आओ तुम।

'प्रयाग'
जनवरी '५५

गीत

भूला भूला याद कभी तुमको आ जाऊँ तो,
हाँक लगा लेना —
आ जाऊँगा !

माना, उजला चाँद तुम्हें प्यासी आँखों से देखता !
माना, सूरज तुमको अपना प्यार - सँदेशा भेजता !
माना, किये सिंगार सोलहों मंज़िल तुम्हें अगोरती !
माना, पौरुष की शहजादी संकेतों पर डोलती !

फिर भी फूलों की दुनियाँ से मन भर जाये तो,
पास चले आना —
दुलराऊँगा !

दुनियाँ गाती गीत उसी के जिसकी फूली क्यारियाँ
दुनियाँ देती दाद जीत में, और हार में तालियाँ!
दुनियाँ से विश्वास हटाने को न कभी मैं कह रहा—
रूप, जवानी, जीवन का रस रोज यहाँ है बह रहा;

हाँ— इसकी खुदगर्जी से यदि जी भर जाये तो,
हाथ बढ़ा देना—
अपनाऊँगा!

गाते जाओ, जब तक पथ पर बजती हैं शहनाइयाँ!
गाते जाओ, जब तक पथ की टूट रहीं परछाइयाँ,
लेगी दुनियाँ फेर निगाहें जब यह अपने प्यार की!
उठ जायेगी रौनक जब इस फूलों के बाज़ार की,

तब पथ के सूनेपन से यदि मन घबराये तो,
हाँक लगा लेना—
आजाऊँगा!!

हुगली तट
मार्च, '५७

गीत ये.....

कलियों के अधरों पर
गीत दुबक सोते हैं !
खुलती पंखुड़ियों पर
गीत मुखर होते हैं !

तैर रहे फागुन की,
गदराई सरसों पर —
कितने ये पीले हैं !
तीसी के फूलों पर –
दिखते कुछ नीले हैं !!
गीत ये हठीले है !!!

रात की उदासी में
गीत डबडबाते हैं
ऊषा की चितवन पर,
गीत लुटे जाते हैं !

साँझ की सँझौती में
गीत जला करते हैं !
विरहिन की आँखों में
गीत पला करते हैं !

आग में मचलते हैं,
तनिक नहीं डरते हैं
खेतों में जाते हैं,
मेड़ों पर छाते हैं,
हलधर की हाँकों में
गीत मुस्कराते हैं
गीत ये हठीले हैं,
सूखे हैं, गीले हैं,

गीत बहुत चीख़ रहे
मुझको बुलाते हैं
किन्तु बड़ी मुश्किल है,
फिसल - फिसल जाते हैं,
पास आ न पाते हैं—
दूर पड़े जाते हैं !

गीत ये हठीले हैं !
नीले हैं !!
पीले हैं !!!
सूखे हैं !!!!
गीले हैं !!!!

'हुगली तट'
मार्च '५७